श्री कलराज मिश्र

माननीय राज्यपाल, राजस्थान का उद्‌बोधन

दसवीं अनुसूची में अध्यक्ष की भूमिका विषय पर सेमिनार का समापन समारोह

दिनांक 29 फरवरी, 2020 **समय सांय – 04.00 बजे**

स्थान – राजस्थान विधान सभा, जयपुर

माननीय अध्यक्ष डॉ. सी.पी. जोशी जी, मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत जी, नेता प्रतिपक्ष श्री गुलाब चन्द कटारिया जी, संसदीय कार्य मंत्री श्री शांति कुमार धारीवाल जी, माननीय सदस्यगण एवं उपस्थित गणमान्य महानुभाव, पत्रकार बन्धुओ और छायाकार मित्रो।

मैं माननीय अध्यक्ष महोदय को राष्ट्र मण्डल संसदीय संघ की राजस्थान शाखा के तत्वावधान में संविधान की दसवीं अनुसूची के अन्तर्गत माननीय अध्यक्ष की भूमिका विषय पर सेमिनार के आयोजन के लिए बधाई देता हूँ। मुझे जानकारी मिली है कि राष्ट्र मण्डल संसदीय संघ की राजस्थान शाखा के तत्वावधान में यह दूसरा सेमिनार है। राष्ट्र मण्डल संसदीय संघ की राजस्थान शाखा को जीवन्त कर विभिन्न समसामयिक विषयों पर ऐसे कार्यक्रमों के आयोजन से वे माननीय सदस्यों के ज्ञान में वृद्धि के साथ–साथ देश में लोकतंत्र को सशक्त भी कर रहे हैं। इसके लिए आपको बधाई।

आज दिनभर आप सब इस गम्भीर विषय पर गुणीवक्ताओं के विचारों से लाभान्वित हुए। मुझे जानकारी प्राप्त हुई है कि माननीय लोकसभा अध्यक्ष ने राजस्थान विधान सभा अध्यक्ष के सभापतित्व में पीठासीन अधिकारियों की एक समिति का गठन किया है, जो दल–बदल कानून के तहत अध्यक्ष की भूमिका पर विचार कर अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करेगी। इस समिति के दो अन्य सदस्य ओडिशा तथा कर्नाटक के माननीय अध्यक्षों ने भी अपने विचार यहां प्रकट किये हैं। यह राजस्थान विधान सभा के लिए गौरवशाली क्षण है कि इन्हें लोकतंत्र को मजबूत करने की यह महत्ती जिम्मेदारी मिली है। मैं इसके लिए माननीय अध्यक्ष डॉ. जोशी को शुभकामनाएं देता हूँ।

आजादी के पश्चात से ही देश में विधान मण्डल के सदस्यों द्वारा दल–बदल की घटनाएँ बहुतायत में होने लगी थीं। अनेक बार दल–बदल के कारण सरकारों का गठन और पतन हुआ।

21 वीं सदी में गठबंधन सरकार शासन का प्रमुख रूप है। राष्ट्रीय और राज्य स्तर की सरकारें गठबंधन की राजनीति और शासन के तरीकों से शासित होती हैं। ऐसे परिदृश्य में सरकार की स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए एक दलबदल–विरोधी कानून आवश्यक प्रतीत होता है। दसवीं अनुसूची का उद्देश्य राजनीतिक दोषों की बुराई से छुटकारा पाना था। इसे 1970 के दशक की शुरुआत में राजनीतिक स्थिरता के लिये समय की जरूरत कहा जा सकता है। दिसम्बर 1967 को लोकसभा ने एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें इन दोषो को दूर करने के लिये एक समिति का गठन किया गया। इस समिति ने 7 जनवरी, 1969 की अपनी रिपोर्ट में विभिन्न प्रदेशों के विधायकों द्वारा पार्टी के प्रति निष्ठावान न रहने की बढ़ती प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला। समिति ने एक ही व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह द्वारा चूक के कई कृत्यों का उल्लेख किया और यह बताया कि भ्रष्टाचार और रिश्वत इन अधिकांश दोषों के मूल कारण थे।

1967 और 1972 में चौथे और पांचवें आम चुनावों में, राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में लोकसभा और विधान सभाओं के 4000 सदस्यों में से, लगभग 2000 मामले दलबदल के थे, जो कि लगभग आधी संख्या थी। मार्च, 1971 के अंत तक, लगभग 50 प्रतिशत विधायकों ने अपनी पार्टी की प्रतिबद्धता बदल दी थी और उनमें से कई ने अनेक अवसरों पर इसका उपयोग किया था।

लोकतंत्र को कमजोर करने वाली इन दल–बदल की घटनाओं को प्रतिबंधित करने के लिए वर्ष 1985 में 52 वें संविधान संशोधन के माध्यम से संविधान के अनुच्छेद 102 में एक नया खण्ड जोड़ा गया। इस संविधान संशोधन के पश्चात देश में दल–बदल की घटनाओं में कमी हुई, लेकिन यह समस्या पूरी तरह से समाप्त नहीं हो पायी। दल–परिवर्तन की लोकतांत्रिक बुराई को रोकने के लिए पारित किया गया संशोधन स्वागत योग्य था, किन्तु केन्द्र और विभिन्न राज्यों में घटी घटनाओं ने सिद्ध कर दिया है कि दल–बदल विरोधी

कानून भारतीय राजनैतिक दल–बदल की बुराई को दूर करने में अपने उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर पाया है।

इस अधिनियम के अन्तर्गत किसी विधानमण्डल के सदस्य ने दल–बदल किया है या नहीं, इस पर अन्तिम निर्णय देने की शक्ति अध्यक्ष को प्रदान की गई है।

अध्यक्षों ने ऐसे मामलों पर जहां बहुत अच्छे निर्णय भी दिये हैं वहीं कतिपय अध्यक्षों ने अपनी शक्ति का मनमाना प्रयोग भी किया है। उन्होंनें ऐसे निर्णय देते समय इस अधिनियम की अपनी सुविधा से व्याख्या की। इन सुविधानुसार लिये गये निर्णयों को न्यायालय में चुनौतियां मिली और अनेक बार अध्यक्षों के निर्णयों के विरुद्ध टिप्पणियां भी न्यायालय द्वारा की गयीं। जिससे इस पद की गरिमा पर ठेस पहुंची है। कई बार अध्यक्षों ने निर्णय को सत्ताधारी दल के पक्ष अनुसार देने में ही विधान सभा का अधिकांश कार्यकाल समाप्त कर लिया अर्थात समय सीमा की परवाह नहीं की।

दल बदल पर विवादित निर्णयों के कारण विधायिका एवं न्यायपालिका के मध्य टकराव की स्थिति उत्पन्न हुई। ऐसे मामलों की आप सब को जानकारी है। यह अवधारणा रही है कि अध्यक्ष पद पर निर्वाचन के उपरांत अध्यक्ष किसी दल से सम्बन्धित नहीं होता है तथा अपना निर्णय निष्पक्ष होकर देता है।

परन्तु अध्यक्ष भी एक राजनैतिक व्यक्ति होता है तथा उसे भविष्य में किसी न किसी दल के प्रत्याशी के रूप में चुनाव मैदान में उतरना होता है इसलिए उस दल के प्रति उसकी प्रतिबद्धताएँ हैं। इसी कारण ऐसे दृष्टांत उपस्थित हुए हैं जब लोगों को अध्यक्षों द्वारा लिये गये निर्णय पक्षपात पूर्ण लगे या फिर न्यायालय के निर्णयों ने उन्हें पक्षपातपूर्ण सिद्ध किया।

विधेयक पास होने के समय भी इस तथ्य पर चर्चा की गई कि स्पीकर/अध्यक्ष चूँकि किसी दल विशेष का सदस्य होता है अतः उनके द्वारा न्यायपूर्ण रूप से निर्णय करने की अपेक्षा पर प्रश्न चिन्ह लगा है। लेकिन इस तर्क के बावजूद

भी इस दल बदल के संबंध में इस निर्णय का अधिकार निम्न सदन के अध्यक्ष को दिया गया। यहाँ यह तर्क दिया जा सकता है कि विधायिका अपने आप में अपनी कार्य प्रणाली अपनाने के लिये स्वतंत्र है, इसलिये इसमें निर्णय का अधिकार न्यायपालिका को नहीं दिया गया। यही कारण है कि अनेक अवसरों पर न्यायपालिका की शरण में जाने के बावजूद न्यायपालिका केवल मात्र विधान सभा अध्यक्ष को शीघ्र बैठक आहूत करने मात्र का ही निर्देश देती है।

इस कानून के अन्तर्गत पार्टी महत्वपूर्ण विषयों पर होने वाले सदन मे मतदान के संदर्भ में व्हिप जारी करने का अधिकार रखती है। व्हिप का उल्लघंन करने पर सदस्य की सदस्यता समाप्त होने का खतरा उत्पन्न हो जाता है। सदस्यता समाप्त करने का अधिकार भी अध्यक्ष (स्पीकर) के अधीन ही है भले ही वह किसी भी दल का सदस्य हो।

इन्हीं कारणों से विभिन्न विधानसभाओं में स्पीकर या तो निर्णय नहीं कर पा रहे हैं या पक्षपात पूर्ण निर्णय करते हैं।

कानून में कही भी स्पीकर के द्वारा निर्णय किये जाने की समय सीमा निर्धारित नहीं है। सामान्य रूप से स्पीकर इस कमी का लाभ उठा कर अपने दल के हितों का साधन करते हैं। इन्ही परिस्थितियों के अर्न्तगत इस प्रकार के मुद्दे उच्च न्यायालयों एवं माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष आ रहे हैं और सर्वोच्च न्यायालय इसके समाधान हेतु एक समयबद्ध तरीके से स्पीकर को निर्णय लेने का निर्देश देते हैं।

यदि हम हाल ही में विधान सभा में हुये इस सन्दर्भ की घटना को दखते है तो 2016 में उत्तराखण्ड विधान सभा में चर्चा के दौरान मत विभाजन की मांग की गई जिसे तत्कालीन विधान सभा अध्यक्ष के द्वारा नकार दिये जाने की स्थिति में विधायकों के द्वारा राज्यपाल के समक्ष उपस्थित होकर सरकार को अल्पमत में होने के कारण बर्खास्त करने की मांग की गई। तत्पश्चात राज्यपाल महोदय के द्वारा केन्द्र सरकार को राष्ट्रपति शासन लागू किये जाने की सिफारिश की गई। अंत में राष्ट्रपति महोदय के द्वारा अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। जिसमें

कालांतर में माननीय न्यायालय द्वारा प्रकरण का न्यायिक पुनरावलोकन किया गया।

न्यायालय ने राष्ट्रपति शासन समाप्त कर गुप्त मतदान के द्वारा सदन के नेता के निर्वाचन का आदेश दिया।

कर्नाटक विधान सभा में 2019 में काँग्रेस व जे.डी.एस. के सदस्यो के द्वारा त्याग पत्र दिये जाने पर जिनकी संख्या 2/3 से कम थी की सदस्यता तत्कालीन स्पीकर के द्वारा समाप्त किये जाने की स्थिति में सर्वोच्च न्यायालय में अपील की गई जिस पर तीन सदस्यों की बैंच ने निम्न निर्णय लिये:–

(i) विधायकों को कानून की उचित प्रक्रिया को अपनाते हुये उच्च न्यायालय जाना चाहिये था।

सर्वोच्च न्यायालय ने कर्नाटक विधान सभा के स्पीकर के. आर.रमेश कुमार के निर्णय को उचित ठहराते हुये कहा कि स्पीकर की स्थिति (Quasi Judicial) अर्द्ध न्यायिक है। उन्होनें याचिकाकर्ता काँग्रेस व जे.डी.एस. के विधायको से कहा कि

उन्हें अनुच्छेद 32 का प्रयोग करते हुये सर्वोच्च न्यायालय में आने से पहले उच्च न्यायालय जाना चाहिये था।

(ii) सर्वोच्च न्यायालय की पीठ का मत था कि स्पीकर को स्थिति के संदर्भ में निर्णय लेने के लिये समुचित (यथोचित) समय दिया जाना उचित रहेगा।

(iii) इसके साथ ही उनका मत था कि आजकल एक नवीन प्रवृति देखने को मिल रही है कि स्पीकर से अपेक्षा की जाती है कि वह तटस्थ रहे ऐसा नहीं हो पा रहा है। इसके दुष्परिणाम स्वरूप प्रजा के अधिकार जो कि स्थिर सरकार के हैं वो नहीं मिल पा रहे हैं।

(iv) इसके साथ ही बेंच का मत था कि इससे खरीद फरोख्त (Horse Trading) को बढावा मिलता है तथा विधायकों को व्यक्तिगत हित साधने का मौका भी प्रचुर मात्रा में मिलता है।

उच्चतम न्यायालय ने भी इस विषय पर अपनी राय प्रकट की कि पीठासीन अधिकारियों द्वारा दल बदल के निर्णय देने सम्बन्धी अधिकार पर संसद पुनर्विचार करें।

आज सबसे बड़ा प्रश्न यही है कि स्पीकर जो खुद किसी पार्टी के सदस्य होते हैं, क्या उन्हें विधायकों और सासंदों की अयोग्यता पर फैसला लेना चाहिए? विधान सभा अध्यक्षों की छवि बेदाग रखने के लिए इस विषय पर आपने आज यहां विचार किया है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में एक विकल्प तो यह है कि पीठासीन अधिकारी राजनैतिक विचार धारा से ऊपर उठकर ऐसे प्रकरणों पर निष्पक्ष निर्णय दें। दल बदल याचिकाओं पर निर्णय की समय सीमा निर्धारित की जाये जिससे सदस्यता समाप्ति का दण्ड शीघ्र मिल सके और वह विधानमण्डल की सदस्यता से अधिक समय तक वंचित रहे। यह समय सीमा न्यायोचित एवं तर्कसंगत हो।

इस संबंध में दूसरा विकल्प यह होगा कि राष्ट्रीय स्तर पर प्रत्येक विधान सभा में न्यायविदों एवं शिक्षाविदों तथा विधि विशेषज्ञों के साथ इस विषय पर व्यापक विचार विमर्श किया जाए तथा निष्कर्ष को संकल्प के रूप में पारित कर संसद में प्रस्तुत किया जाए ताकि दल–बदल अधिनियम के गैप्स को भरा जा सके।

मैं एक बार पुनः मंचासीन पदाधिकारियों को इस सेमिनार के सफल आयोजन के लिए बधाई।

धन्यवाद। जयहिन्द।